Chapter-1

[library stamp]

प्रथम अध्याय

HANSA MEHTA LIBRARY

प्रथम अध्याय

परिवार का स्वरूप

- परिवार का स्वरूप
- अर्थ
- परिभाषा
- परिवार के प्रकार
- परिवार के प्रकार्य
- परिवार की विशेषताएं

स्वरूप :

प्राणीशास्त्र सम्बन्धों के आधार पर बने समूहों में परिवार सबसे छोटी इकाई है। अनेक समाजशास्त्रियों का मत है कि परिवार ''समाज रूपी भवन के कोने का पत्थर है।'' यह सामाजिक संगठन की मौलिक इकाई है। परिवार के अभाव में मानव समाज के संचालन की कल्पना भी करना कठिन प्रतीत होता है। प्रत्येक मनुष्य, किसी न किसी परिवार का सदस्य रहा है या है। ''समाज में परिवार ही अत्यधिक महत्वपूर्ण समूह है।''[1] मानव की समस्त सामाजिक संस्थाओं में परिवार एक आधारभूत और सर्वव्यापी सामाजिक संस्था है। संस्कृति के सभी स्तरों में चाहे उन्हें उन्नत कहा जाय या निम्न किसी न किसी प्रकार का पारिवारिक संगठन अनिवार्यतः पाया जाता है। शारीरिक आवश्यकताओं एवं कामवासना की पूर्ति ने ही परिवार को जन्म दिया। ''मैलिनोवस्की कहते हैं कि ''परिवार ही एक ऐसा समूह है जिसे मनुष्य पशु अवस्था में अपने साथ लाया है।''[2]

परिवार समाज की आधारभूत इकाई है जो मानव के विकास के सभी स्तरों पर पायी जाती है। चाहे इसके रूप एवं प्रकार भिन्न-भिन्न क्यों न रहे हों। एक सामाजिक संस्था एवं समूह के रूप में परिवार अनेक प्रकार्य करता है। परिवार में गर्भवती माताओं और छोटे शिशुओं की सुरक्षा व देखभाल होती है। परिवार ही काम की स्वाभाविक प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर यौन-सम्बन्ध और सन्तानोत्पत्ति की क्रियाओं का नियमन करता है और भावात्मक घनिष्ठता का वातावरण पैदा करता है। यह नवजात शिशु का उचित पालन-पोषण, शिक्षा-

दीक्षा, समाजीकरण और आर्थिक तथा धार्मिक कार्यो को भी पूर्ण करवाता है। स्त्री-पुरुष का यौन-आकर्षण जब विवाह के रूप में समाज द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो वह स्वतः ही परिवार में परिवर्तित हो जाता है। मैलिनोवस्की का कहना है कि ''विवाह ही नातेदारी व्यवस्था का फाउण्टेन हैड है।''[3] विवाह से एक नया परिवार अस्तित्व में आता है। परिवार और विवाह सार्वभौमिक संस्थाएँ हैं और इनके द्वारा ही समाज अपने सदस्यों के यौन व्यवहारों का नियंत्रण करता है। यदि ऐसा न हो तो समाज में अव्यवस्था पैदा हो जायेगी। परिवार की स्थापना द्वारा यौन तृप्ति समाज द्वारा स्वीकृत विधि है। इसीलिए लूसी मेयर लिखते हैं - ''परिवार का कानूनी आधार विवाह है।''[4] वैसे तो हमें कई समाजों में विशेष उत्सवों आदि पर यौन व्यवहारों की छूट देखने को मिलती है। और कई समाजों में परिवार के बाहर भी यौन व्यवहार प्रचलित हैं जो विवाह के पूर्व एवं विवाह के बाहर यौन व्यवहारों की स्वतंत्रता किस सीमा तक होगी या उनका नियमन कैसे होगा। परिवार में व्यक्ति अपनी यौन इच्छाओं की ही पूर्ति नहीं करता वरन् नये प्राणियों को जन्म देकर मृत्यु को प्राप्त होने वाले सदस्यों के रिक्त स्थानों को भी भरता है तथा समाज की निरन्तरता बनाये रखता है। परिवार लगभग सभी स्थानों पर यौन क्रियाओं के नियमन और समाज के नये सदस्यों की भर्ती के लिए उत्तरदायी है। इस प्रकार परिवार ही नये सदस्यों को जन्म देकर समाज को बनाये रखता है। आदिम समय से ही मानव अमरत्व की खोज करता रहा है। इसके लिए उसने अनन्त काल से अनेक उपाय किये, जड़ी-बूटियाँ ढूँढी, रसायन और अमृत की खोज के अनेक परीक्षण भी किये, किन्तु वह परिवार के अतिरिक्त इसका कोई अन्य हल नहीं खोज पाया। विवाह द्वारा परिवार का निर्माण कर संतानों के माध्यम से व्यक्ति का विस्तार होता है और वह मर कर भी अमर बना रहता है। मनुष्य को एक तरफ अपनी मृत्यु का दुःख है तो दूसरी तरफ उसे यह भी संतोष है कि वह परिवार द्वारा अपने वंशजों के रूप में अनन्त काल तक जीवित रहेगा। हमारे जीवन में जो कुछ भी सुन्दरता है, परिवार ने उसकी सुरक्षा की है, उसी ने मानव को सांस्कृतिक समृद्धि प्रदान की है। स्त्री और पुरुष दोनों ही परिवार के मूल हैं, नदी के दो तटों के समान हैं, जिनके बीच जीवन रूपी धारा का लगातार प्रवाह हो रहा है। परिवार नये प्राणियों को जन्म देकर मृत्यु से रिक्त होने वाले स्थानों को भरता है तथा समाज की निरन्तरता को बनाये रखता है। यही कारण है कि परिवार मानव के साथ प्रारम्भ से ही है।

अर्थः

'Family' शब्द का उद्‌गम लैटिन शब्द 'Famulus' से हुआ है, जो एक ऐसे समूह के लिए प्रयुक्त हुआ है जिसमें माता-पिता, बच्चे, नौकर और दास हों। साधारण अर्थो में विवाहित जोडे को परिवार की संज्ञा दी जाती है। किन्तु समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह परिवार शब्द का सही प्रयोग नहीं है। परिवार में पति-पत्नी एवं बच्चों का होना आवश्यक है। इनमें से किसी भी एक के अभाव में हम उसे परिवार न कहकर गृहस्थ (Household) कहेंगे। यह सम्भव है कि परिवार एवं गृहस्थ के सदस्य एक ही हों। प्रत्येक परिवार एक गृहस्थ भी है, किन्तु सभी गृहस्थी परिवार नहीं हैं।

परिभाषाएँ:

विभिन्न विद्वानों ने परिवार को इस प्रकार परिभाषित किया है :

1. मैकाइवर एवं पेज के अनुसार - ''परिवार पर्याप्त निश्चित यौन सम्बन्ध द्वारा परिभाषित एक ऐसा समूह है जो बच्चों के जीवन एवं लालन-पालन की व्यवस्था करता है।''[5]
2. डॉ. दुबे के अनुसार - ''परिवार में स्त्री और पुरुष दोनों को सदस्यता प्राप्त रहती है, उनमें से कम-से-कम दो विपरीत यौन व्यक्तियों को यौन सम्बंधों की सामाजिक स्वीकृति रहती है और उनके संसर्ग से उत्पन्न सन्तान परिवार का निर्माण करते हैं।''[6]
3. लूसी मेयर - ''परिवार एक गार्हस्थ्य समूह है जिसमें माता-पिता और सन्तान साथ-साथ रहते हैं। इसके मूल रूप में दम्पत्ति और उसकी संतान रहती है।''[7]

उर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि विद्वानों ने परिवार को विभिन्न दृष्टिकोणों से परिभाषित किया है।

परिवार के समूह, एक संघ और एक संस्था के रूप में समाज में विद्यमान है। प्रत्येक समाज में परिवार के दो पक्ष स्पष्ट होते हैं। एक संरचनात्मक (Structural) एवं दूसरा प्रकार्यात्मक (Functional) पक्ष। अपने मूल रूप में परिवार की संरचना पति-पत्नी और

बच्चों से मिलकर बनी है। इस दृष्टि से प्रत्येक परिवार में कम-से-कम तीन प्रकार के सम्बन्ध विद्यमान होते हैं।

(i) पति-पत्नी के सम्बन्ध

(ii) माता-पिता एवं बच्चों के सम्बन्ध

(iii) भाई-बहनों के सम्बन्ध

प्रथम प्रकार का सम्बन्ध वैवाहिक सम्बन्ध होता है। जबकि दूसरे और तीसरे प्रकार के सम्बन्ध रक्त सम्बन्ध होते हैं। इसी आधार पर परिवार के सदस्य परस्पर नातेदार भी हैं। स्पष्ट है कि एक परिवार में वैवाहिक एवं रक्त सम्बन्धों का पाया जाना आवश्यक है। इन सम्बन्धों के अभाव में परिवार का निर्माण सम्भव नहीं है।

प्रकार्यात्मक दृष्टि से परिवार का निर्माण कुछ मूल उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है। परिवार का उद्देश्य यौन सम्बन्धों का नियमन करना, सन्तानोत्पत्ति करना, उनका लालन-पालन, शिक्षण व समाजीकरण करना एवं उन्हें आर्थिक, सामाजिक और मानसिक संरक्षण प्रदान करना है। इन प्रकार्यो की पूर्ति के लिए परिवार के सदस्य परस्पर अधिकारों एवं कर्तव्यों से बंधे होते हैं। परिवार की सांस्कृतिक विशेषता यह है कि परिवार समाज की संस्कृति की रचना, सुरक्षा, हस्तान्तरण एवं संवर्धन में योग देता है।

संक्षेप में हम परिवार को जैविकीय सम्बंधों पर आधारित एक सामाजिक समूह के रूप में परिभाषित कर सकते हैं जिसमें माता-पिता और बच्चे होते हैं तथा जिसका उद्देश्य अपने सदस्यों के लिए सामान्य निवास, आर्थिक सहयोग, यौन सन्तुष्टि और प्रजनन, समाजीकरण और शिक्षण आदि की सुविधाएँ जुटाना है।

परिवार के प्रकारः

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में मानव समाज के विकास के साथ परिवार के भी अनेक रूप अस्तित्व में आये हैं। प्रत्येक स्थान की भौगोलिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों ने

भिन्न-भिन्न प्रकार की परिवार व्यवस्था को जन्म दिया है। सदस्यों की संख्या, विवाह का स्वरूप, स्त्री-पुरुष की सत्ता, निवास, वंशनाम आदि के आधार पर परिवार का वर्गीकरण किया जाता है। चूँकि हमारे शोध प्रबंध के केन्द्र में हिन्दी उपन्यासों में समसामयिक परिवार है इसलिये परिवार के प्रकारों को जानना आवश्यक है।

(I) संख्या के आधार पर परिवार

(क) केन्द्रीय परिवार या नामिक परिवारः

इस प्रकार के परिवार आधुनिक औद्योगिक समाजों की प्रमुख विशेषता है। औद्योगिकरण और नगरीकरण के बढ़ने के साथ-साथ इस प्रकार के परिवारों की संख्या बढ़ती जा रही है। जहॉ कृषि-प्रधान समाजों में संयुक्त परिवार व्यवस्था की प्रधानता पायी जाती है, वहीं औद्योगिक समाजों में केन्द्रीय या नामिक परिवारों की।

केन्द्रीय या नामिक परिवार, परिवार का सबसे छोटा रूप है जो एक पुरुष, स्त्री तथा उनके आश्रित बच्चों से मिलकर बना होता है। इस प्रकार के परिवारों में अन्य रिश्तेदारों को सम्मिलित नहीं किया जाता। इसमें बच्चे भी अविवाहित रहने तक ही रहते हैं।

(ख) संयुक्त परिवारः

एक संयुक्त परिवार में तीन या तीन से अधिक पीढ़ियों के सदस्य साथ-साथ एक ही घर में निवास करते हैं, उनकी सम्पत्ति सामूहिक होती है, वे एक ही रसोई में बना भोजन करते हैं, सामूहिक पूजा में भाग लेते हैं और परस्पर किसी न किसी नातेदाती व्यवस्था से सम्बंधित होते हैं। संयुक्त परिवार के सदस्य परस्पर अधिकारों व दायित्वों को निभाते हैं।

(ग) विस्तृत परिवारः

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में परिवार के सभी रक्त सम्बंधी एवं कुछ अन्य सम्बंधी भी सम्मिलित होते हैं। ये एकपक्षीय मातृपक्ष या पितृपक्ष या द्वि-पक्षीय भी हो सकते हैं। ऐसे परिवारों में सम्बंध व रिश्तेदारी का भी ठीक-ठीक ज्ञान नहीं हो पाता है।

ऐसे परिवारों के सदस्यों की संख्या बहुत अधिक होती है। इन सभी सदस्यों का निवास स्थान और कार्य एक ही होता है और वे परिवार के मुखिया को सम्मान की दृष्टि से देखते हैं।

(II) निवास के आधार परः

विवाह के बाद दम्पत्ति का निवास स्थान कहाँ है, इस आधार पर भी परिवारों का वर्गीकरण किया गया है जो इस प्रकार हैः

(क) पितृ स्थानीय परिवारः

यदि विवाह के बाद पत्नी अपने पति एवं पति के माता-पिता के साथ रहने लगती है तो उसे हम पितृ स्थानीय परिवार कहते हैं। हिन्दुओ, मुसलमानों एवं भील, खरिया तथा कई पितृवंशीय परिवारों में यह प्रथा पायी जाती है।

(ख) मातृ स्थानीय परिवारः

इसके विपरीत जब विवाहोपरांत पति पत्नी के माता-पिता के निवास स्थान पर रहने लगता है तो उसे मातृ-स्थानीय परिवार कहते हैं। ऐसे परिवार भारत में मालाबार के नायरों, खासी व गारों जनजातियों में देखने को मिलते हैं।

(ग) नव-स्थानीय परिवारः

जब परिवार में पति-पत्नी विवाह के बाद न तो पति पक्ष के लोगों के साथ और न ही पत्नी पक्ष के लोगों के साथ रहते हैं वरन् अपना अलग नया घर बनाकर रहते हैं तो उसे नव-स्थानीय परिवार कहते हैं।

(घ) मातृ-पितृ स्थानीय परिवारः

कई समाजों में नवविवाहित दम्पत्ति पति या पत्नी में से किसी एक के ही साथ रहने को बाध्य नहीं होते वरन् दोनों में से किसी के भी साथ रह सकते हैं। ऐसे परिवार को मातृ-पितृ स्थानीय परिवार कहते हैं।

(च) मामा-स्थानीय परिवारः

इसमें नवविवाहित दम्पत्ति पति की माँ के भाई अर्थात् मामा के परिवार में जाकर रहने लगते हैं। ट्रोबियाण्डा द्वीपवासियों में यह प्रथा प्रचलित है कि विवाह के बाद

भानजा अपनी पत्नी सहित मामा के यहाँ रहने चला जाता है।

(छ) द्वि–स्थानीय परिवारः

कुछ स्थानों पर ऐसे भी परिवार हैं जहाँ विवाह के बाद पति–पत्नी अपने-अपने जन्म के परिवारों में ही रहते हैं। लक्षद्वीप, केरल और अशांही जनजाति में इस प्रकार के परिवार पाये जाते हैं। पति रात्रि को अपनी पत्नी के घर जाता है परन्तु दिन में वह अपने जन्म के परिवार में ही रहता है।

(III) अधिकार के आधार पर :

परिवार मे माता-पिता में से किसकी सत्ता चलती है या किसे अधिक अधिकार प्राप्त हैं, इस आधार पर परिवारों को दो भागों में बाँटा गया है।

(क) पितृ सत्तात्मक परिवारः

ऐसे परिवार में सत्ता एवं अधिकार पिता व पुरुषों के हाथ में होते हैं। वे ही परिवार का नियंत्रण करते हैं।

(ख) मातृ सत्तात्मक परिवारः

ऐसे परिवारों में पितृ सत्तात्मक के विपरीत माता में या स्त्री में ही अधिकार तथा सत्ता निहित होती है। वही पारिवारिक नियंत्रण बनाये रखने का कार्य करती है। भारत में नागर, खासी, गारो आदि लोगों में इस प्रकार के परिवार पाये जाते हैं।

(IV) उत्तराधिकार के आधार परः

अधिकार की तरह एक ही परिवार में संतानों को पद आदि दिये जाने का क्रम भी पितृ पक्ष में पुत्रों को या मातृ पक्ष की लड़कियों को दिया जा सकता है। इस आधार पर भी परिवार दो प्रकार के पाये जाते हैं (क) पितृमार्गी परिवार (ख) मातृमार्गी परिवार।

(V) वंशनाम के आधार परः

परिवारों का वर्गीकरण वंशनाम के आधार पर किया जाता है। वंशनाम के नियम एक व्यक्ति को जन्म से ही किसी विशिष्ट सम्बंधी समूह से सम्बद्ध करते हैं।

(क) पितृवंशीय परिवार :

ऐसे परिवारों में वंश परम्परा पिता के नाम से चलती है। पुत्रों को पिता का वंशनाम प्राप्त होता है। हिन्दुओं में परिवार पितृवंशीय है।

(ख) मातृवंशी परिवारः

ऐसे परिवारों में वंश परम्परा माँ के नाम से चलती है। और माँ से पुत्रियों को वंशनाम मिलते हैं। मालाबार के नायरों में यही प्रथा है।

(ग) उभयवाही परिवारः

उभयवादी परिवारों में एक व्यक्ति अपने दादा-दादी एवं नाना-नानी चारों सम्बन्धियों से समान रूप से सम्बद्ध होता है।

(घ) द्विनामी परिवारः

ऐसे परिवारों में एक व्यक्ति एक ही समय में अपने दादा और नानी से सम्बद्ध रहता है। अन्य दो सम्बंधी (दादी और नाना) छोड दिये जाते हैं। यह भी उभयवाही वंश का ही एक रूप है।

(VI) विवाह के आधार परः

(क) एक–विवाही परिवार :

एक विवाही परिवार एक पुरुष व एक स्त्री के सम्मिलन से बनता है। इसमें पति-पत्नी एवं उनके अविवाहित बच्चे होते हैं।

(ख) बहु–विवाही परिवार :

ऐसे परिवारों में एक से अधिक जीवन–साथी स्वीकृत होते हैं। इसके अनेक रूप हैं:

(I) **बहु–पत्नीक परिवार** : जब एक पुरुष को एक समय में एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करने की स्वीकृति होती है तो उसे पहु–पत्नीक परिवार कहते हैं।

(II) **बहुपति–विवाही परिवार** : जहाँ एक स्त्री एक समय में एक से अधिक पुरुषों से विवाह करती हो तो उसे बहुपति–विवाह परिवार कहते हैं। इसके भी दो रूप हैं : एक वह जिसमें सभी भाई मिलकर एक स्त्री से विवाह करते हैं, इसे भ्रातृ बहुपतिक परिवार कहते हैं। द्वितीय, अभ्रातृ बहुपतिक परिवार वह परिवार है जिसमें पति एक–दूसरे के भाई न होकर अन्य रिश्तेदार भी हो सकते हैं। इस प्रकार के परिवार जौनसार बाबर के खस, नीलगिरि के टोड़ा एवं मालाबार के नायर लोगों में तथा तिब्बत में पाये जाते है।

(ग) समूह–विवाही परिवारः

जब कई भाई या कई पुरुष मिलकर स्त्रियों के एक समूह से विवाह करे और सब पुरुष सब स्त्रियों के समान रूप से पति हों तो वह समूह-विवाही परिवार कहलाता है।

(VII) परिवार के कुछ अन्य स्वरूपः

(क) जन्ममूलक परिवारः

वह परिवार जिसमें एक व्यक्ति जन्म लेता है, तथा उसका पालन-पोषण होता हे, जन्ममूलक परिवार कहा जाता है। ऐसे परिवार में व्यक्ति के माता-पिता एवं अविवाहित भाई-बहन आते हैं।

(ख) प्रजननमूलक परिवारः

ऐसे परिवार का निर्माण व्यक्ति विवाह के बाद स्वयं करता है। इसमें एक पुरुष, उसकी पत्नी एवं अविवाहित बच्चे होते हैं।

(ग) समरक्त परिवारः

लिण्टन ने परिवार के दो प्रकार बतलाये हैं : (1) समरक्त परिवार (2) विवाह सम्बंधी परिवार। समरक्त परिवार में सभी सदस्य रक्त से संबंधित होते हैं और कोई भी विवाह संबंधी उसमें नहीं रहता। उदाहरण के लिए नायर परिवार जो कि मातृ-सत्तात्मक है, में पति यदा-कदा ही अपनी पत्नी के यहाँ आकर रहता है। अधिकांशतः एक स्त्री के सभी मातृवंशज ही उसमें रहते हैं।

(घ) विवाहसंबंधी परिवारः

ऐसे परिवारों में रक्त संबंधी एवं विवाह संबंधी दोनों ही साथ-साथ रहते हैं, किन्तु मुख्य जोर विवाह सम्बंध पर ही दिया जाता है।

(ङ) ग्रामीण परिवारः

भारतीय ग्रामों में पाये जाने वाले परिवार संयुक्त प्रकार के होते हैं। उनकी अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित होती है। तथा सदस्यों में प्राथमिक सम्बंधों की प्रधानता पायी जाती है। सजातीयता, परम्परा एवं धर्म की प्रधानता, रुढ़िवादिता, कठोर सामाजिक एवं नैतिक अनुशासन, कर्ता की निरंकुशता एवं सहयोग ग्रामीण परिवारों की मुख्य विशेषताएँ है।

(च) नगरीय परिवारः

इस प्रकार के परिवार नाभिक प्रकार के होते हैं जो औद्योगिकरण की देन है। लघु आकार, स्वतंत्रता, समानता और गतिशीलता इस प्रकार के परिवारों की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

परिवार के प्रकार्यः

परिवार समाज की आधारभूत इकाई है। मानव ने अनेकानेक आविष्कार किये हैं, किन्तु आज तक वह कोई भी ऐसी व्यवस्था नहीं कर पाया है, जो परिवार का स्थान ले सके। इसका मूल कारण यह है कि परिवार द्वारा किये जाने वाले प्रकार्य अन्य संघ एवं संस्थाएँ करने में असमर्थ हैं। हम यहाँ परिवार के कार्यो का संक्षेप में उल्लेख करेंगे। परिवार के इन विभिन्न कार्यों से परिवार का महत्व स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है।

(I) प्राणीशास्त्रीय कार्यः परिवार के प्राणीशास्त्रीय कार्य निम्न हैं:

(अ) **यौन इच्छाओं की पूर्तिः** मानव की आधारभूत आवश्यकताओं में यौन सन्तुष्टि भी महत्वपूर्ण है। परिवार ही वह समूह है जहॉ मानव समाज द्वारा स्वीकृत विधि से व्यक्ति अपनी यौन-इच्छा की पूर्ति करता है। कोई भी समाज यौन सम्बंध स्थापित करने की नियमहीन एवं निर्बाध स्वतंत्रता नहीं दे सकता क्योंकि यौन-संबंधों के परिणामस्वरूप सन्तानोत्पत्ति होती है, नातेदारी व्यवस्था जन्म लेती है। पदाधिकार एवं उत्तराधिकार तथा वंशनाम व्यवस्थाएँ भी इससे जुड़ी रहती हैं।

(ब) **सन्तानोत्पत्तिः** यौन सन्तुष्टि एक दैहिक क्रिया के रूप में ही समाप्त नहीं होती, वरन् इसका परिणाम सन्तानोत्पत्ति के रूप में भी होता है। मानव समाज की निरन्तरता बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि मृत्यु को प्राप्त होनेवाले सदस्यों का स्थान नवीन सदस्यों द्वारा भरा जाये। परिवार ही समाज के इस महत्वपूर्ण कार्य को निभाता है। परिवार के बाहर भी सन्तानोत्पत्ति हो सकती है किन्तु कोई भी समाज अवैध सन्तानों को स्वीकार नहीं करता। वैध सन्तानों को ही पदाधिकार एवं उत्तराधिकार प्राप्त होता है।

(स) **प्रगति की निरन्तरताः** परिवार ने ही मानव जाति को अमर बनाया है। यही मृत्यु और अमरत्व का संगम-स्थल है। नयी पीढी को जन्म देकर परिवार ने मानव की स्थिरता एवं निरंतरता को बनाये रखा है। गुडे लिखते हैं कि ''यदि परिवार मानव की प्राणीशास्त्रीय आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त व्यवस्था न करे तो समाज समाप्त हो जायेगा।''

(II) **शारीरिक कार्यः** परिवार के शारीरिक कार्य निम्न हैंः

(अ) **शारीरिक रक्षा** : परिवार अपने सदस्यों को शारीरिक संरक्षण प्रदान करता है, वृद्धावस्था, बीमारी, दुर्घटना, असहाय अवस्था, अपाहिज होने, आदि की अवस्था में परिवार ही अपने सदस्यों की सेवा करता है। गर्भवती माता एवं नवजात शिशु की शारीरिक रक्षा का भार भी परिवार पर ही होता है।

(ब) **बच्चों का पालन–पोषणः** मानव ही एक ऐसा प्राणी है जिसका शैशव काल अन्य प्राणियों की तुलना में लम्बा होता है। इस अवधि में उसका लालन-पालन परिवार द्वारा ही किया जाता है। वर्तमान समय में शिशुओ के लालन-पालन के लिए अनेक संगठनों का निर्माण किया गया है, किन्तु जो भावात्मक पर्यावरण बच्चों के विकास के लिए आवश्यक है, वह केवल परिवार ही प्रदान कर सकता है।

(स) **भोजन का प्रबंधः** परिवार अपने सदस्यों के शारीरिक अस्तित्व के लिए भोजन की व्यवस्था करता है। आदिकाल से ही अपने सदस्यों के लिए भोजन जुटाना परिवार का प्रमुख कार्य रहा है। आदिम समाजों में जहाँ भोजन जुटाना एक सामूहिक क्रिया है, वहाँ तो परिवार का यह मुख्य कार्य है। मानव के जीवित रहने के लिए भोजन आवश्यक है और जीवित रहकर ही मानव सभ्यता एवं संस्कृति का निर्माण करने में समर्थ हो पाता है।

(द) **निवास एवं वस्त्र की व्यवस्थाः** परिवार अपने सदस्यों के लिए निवास की भी व्यवस्था करता है। घर ही वह स्थान है जहाँ जाकर मानव को पूर्ण शान्ति प्राप्त होती है। सर्दी, गर्मी एवं वर्षा से रक्षा के लिए परिवार ही अपने सदस्यों के वस्त्र एवं शरणस्थान प्रदान करता है।

(III) आर्थिक कार्यः

परिवार द्वारा किये जाने वाले आर्थिक कार्य इस प्रकार हैंः

(अ) **उत्तराधिकार का निर्धारणः** प्रत्येक समाज में सम्पत्ति एवं पदों के पुरानी पीढ़ी द्वारा नयी पीढ़ी को हस्तान्तरण की व्यवस्था पाई जाती है और यह कार्य परिवार को ही करना होता है। वंशगत सम्पत्ति के हस्तान्तरण के प्रत्येक समाज के अपने नियम हैं। पितृ-सत्तात्मक परिवार में उत्तराधिकार पिता से पुत्र को प्राप्त होता है जबकि मातृ-सत्तात्मक परिवार में माता से पुत्री या मामा से भानजे को।

(ब) **उत्पादक कार्यः** परिवार उपभोग एवं उत्पादन की इकाई है। आदिम समाजों में तो अधिकांश उत्पादन का कार्य परिवार के द्वारा ही किया जाता है। मानव समाज की आदिम अवस्थाओं में जैसे, शिकार, पशुपालन एवं कृषि अवस्थाओं में परिवार द्वारा ही सम्पूर्ण उत्पादन का कार्य किया जाता था। प्राचीन उद्योगों में भी निर्माण का कार्य परिवार के द्वारा ही होता था। वर्तमान में भी अविकसित और अपूर्ण औद्योगिक अवस्था के समाजों में निर्माण का कार्य परिवार के स्त्री-पुरुषों एवं बच्चों द्वारा ही किया जाता है। इस प्रकार परिवार उत्पादन की एक सहकारी उत्पादक इकाई है।

(स) **श्रम विभाजनः** परिवार में श्रम विभाजन का सबसे सरल रूप देखा जा सकता है जहाँ पुरुष, स्त्री एवं बच्चों के बीच कार्य का विभाजन होता है। परिवार में कार्य विभाजन का आधार यौन एवं आयु दोनों हैं। स्त्रियाँ गृह-कार्य करती हैं तो पुरुष बाह्य कार्य तथा बच्चे छोटा-मोटा कार्य। शक्ति या परिश्रम साध्य कार्य पुरुषों द्वारा किये जाते हैं। परिवार के सदस्यों में श्रम-विभाजन आर्थिक सहयोग का प्रमुख कारक है।

(द) **आय तथा सम्पत्ति का प्रबंधः** प्रत्येक परिवार के पास सदस्यों के भरण-पोषण के लिए कोई अर्थ व्यवस्था अवश्य होती है। इस अर्थव्यवस्था के द्वारा ही वह आय प्राप्त करता है। परिवार की गरीबी एवं समृद्धि का पता आय से ही ज्ञात होता है। अपनी आय को परिवार कैसे खर्च करेगा, यह भी परिवार का मुखिया तय करता है। प्रत्येक परिवार के पास ज़मीन, जेवर, औजार, नकद, सोना, पशु, दुकान आदि के रूप में चल और अचल सम्पत्ति होती है जिसकी देख-रेख और सुरक्षा भी वही करता है।

(IV) **धार्मिक कार्यः** प्रत्येक परिवार किसी न किसी धर्म का अनुयायी भी होता है। सदस्यों को धार्मिक शिक्षा, धार्मिक प्रथाएँ, नैतिकता, व्रत-त्यौहार, आदि का ज्ञान भी परिवार ही कराता है। ईश्वर पूजा एवं आराधना, पूर्वज पूजा, आदि कार्यो को एक व्यक्ति परिवार के अन्य सदस्यों से ही सीखता है। पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, हिंसा-अहिंसा की धारणा भी एक व्यक्ति परिवार से ही ग्रहण करता है।

(V) **राजनीतिक कार्यः** परिवार राजनीतिक कार्य भी करता है। आदिम और सरल समाजों में जहाँ प्रशासक या जनजाति का मुखिया परिवारों के मुखियाओं से सलाह लेकर कार्य करता है, वहाँ परिवार द्वारा महत्वपूर्ण राजनीतिक भूमिका निभायी जाती है। भारत में संयुक्त परिवारों में कर्ता ही परिवार में प्रशासक होता है, वही परिवार के झगड़ों को निपटाने एवं न्याय करने वाला जज एवं ज्यूरी होता है। वही परिवार का अन्य परिवारों से सम्बंध तय करता है। वही ग्राम पंचायत एवं जाति पंचायत में अपने परिवार का प्रतिनिधित्व करता है।

(VI) **समाजीकरण का कार्यः** परिवार में ही बच्चे का समाजीकरण प्रारम्भ होता है। समाजीकरण की प्रक्रिया से जैविक प्राणी सामाजिक प्राणी बनता है। वहाँ उसे परिवार और समाज के रीति-रिवाजों, प्रथाओं, रुढ़ियों और संस्कृति का ज्ञान होता है। धीरे-धीरे बच्चा समाज की कार्यकारी इकाई बन जाता है। परिवार ही समाज की संस्कृति को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित करता है। परिवार में ही ज्ञान का संचय, संरक्षण एवं वृद्धि होती है।

(VII) **शिक्षात्मक कार्यः** परिवार ही बच्चे की प्रथम पाठशाला है जहाँ उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। परिवार के द्वारा दी गई शिक्षाएॅ जीवन पर्यंत आत्मसात् होती रहती है। महापुरुषों की जीवनियाँ भी इस बात की साक्षी हैं कि उनके व्यक्तित्व निर्माण में परिवार की प्रमुख भूमिका रही है। आदिम समय में जब आज की तरह शिक्षण संस्थाएँ नही थीं तो परिवार ही शिक्षा की मुख्य संस्था थी, परिवार मे ही बालक दया, स्नेह,

प्रेम, सहानुभूति, त्याग, बलिदान, आज्ञापालन एवं कर्तव्यपरायणता का पाठ पढ़ता है।

(VIII) मनोवैज्ञानिक कार्यः परिवार अपने सदस्यों को मानसिक सुरक्षा और संतोष प्रदान करता है। परिवार के सदस्यों में परस्पर स्नेह, सहानुभूति और सद्भाव पाया जाता है। वही बालक में आत्म-विश्वास पैदा करता है। जिन बच्चों को माता-पिता का प्यार एवं स्नेह नहीं मिल पाता, वे अपराधी एवं विघटित व्यक्तित्व वाले बन जाते हैं। माता-पिता में से किसी की मृत्यु, तलाक, पृथक्करण, घर से अनुपस्थिति आदि के कारण बच्चों को स्नेह एवं मानसिक सुरक्षा नहीं मिल पाने पर उनके व्यक्तित्व का समुचित विकास नहीं हो पाता है।

(IX) सांस्कृतिक कार्यः परिवार ही समाज की संस्कृति की रक्षा करता है तथा नयी पीढ़ियों को ज्ञान प्रदान करता है। परिवार ही संस्कृति का हस्तान्तरण और संस्कृति की निरंतरता एवं स्थायित्व बनाये रखता है।

(X) मानव अनुभवों का हस्तान्तरणः पुरानी पीढ़ी द्वारा संकलित ज्ञान एवं अनुभव को अपना अमूल्य योगदान देता है। इसके अभाव में समाज को ही हर पीढ़ी को ज्ञान की नये सिरे से खोज करनी पड़ेगी।

(XI) मनोरंजन का कार्यः परिवार अपने सदस्यों के लिए मनोरंजन का कार्य भी करता है। छोटे-छोटे बच्चों की प्यारी बोली एवं उनके पारस्परिक झगड़े तथा दाम्पत्य प्रेम परिवार के मनोरंजन के केन्द्र हैं। परिवार मे मनाये जाने वाले त्यौहार, उत्सव, धार्मिक कर्मकाण्ड, विवाह- उत्सव, श्राद्ध, भोज, भजन-कीर्तन आदि भी परिवार में मनोरंजन प्रदान करते हैं।

(XII) पद निर्धारणः परिवार अपने सदस्यों का समाज में स्थान निर्धारण का कार्य भी करता है। एक व्यक्ति का समाज मे क्या स्थान होगा, यह इस बात पर भी निर्भर

है कि उसका जन्म किस परिवार में हुआ? राजतंत्र में राजा का सबसे बडा पुत्र ही राजा बनता है। प्रदत्त पदों पर आधारित समाज व्यवस्था में जहाँ जन्म का व्यक्ति के गुणों की तुलना में अधिक महत्व होता है, परिवार का व्यक्ति पद निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

(XIII) सामाजिक नियंत्रणः परिवार का मुखिया अपने सदस्यों पर नियंत्रण रखता है तथा उन्हें गोत्र, जाति एवं समाज की प्रथाओं, परम्पराओं, रुढियों एवं कानूनों के अनुरूप आचरण करने को प्रेरित करता है। ऐसा न करने पर वह उन्हें ताडना देता है, डॉट-डपट करता है, परिवार से बहिष्कार की धमकी देता है। परिवार का वातावरण ही कुछ ऐसा होता है कि वहाँ हर व्यक्ति अपने कर्तव्यों एवं दायित्वों का निर्वाह करता है। वहाँ शक्ति द्वारा नियंत्रण के अवसर कम ही आते हैं।

परिवार के विभिन्न कार्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि परिवार समाज की एक महत्वपूर्ण सार्वभौमिक इकाई है। वर्तमान में वैज्ञानिक प्रगति, औद्योगिकरण, नगरीकरण एवं अन्य परिवर्तनकारी शक्तियों के संयुक्त प्रभाव के कारण परिवार के कार्यों में बहुत परिवर्तन हुआ है। अनेक ऐसी संस्थाएँ एवं समीतियाँ बन गई हैं जो परिवार के कार्यो को छीन रही हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि परिवार द्वारा चार कार्य प्रमुख रूप से किये जाते हैं जो अन्य समीतियों द्वारा नहीं किये जाते हैं। ये कार्य हैं - प्रजनन, व्यक्ति का समाज में स्थान निर्धारण करना, समाजीकरण करना एवं शिक्षा प्रदान करना। कुछ विद्वानों ने स्थान निर्धारण के स्थान पर आर्थिक कार्यों को महत्वपूर्ण माना है।

परिवार की विशेषताएँः भारतीय सामाजिक व्यवस्था में कुछ विशेषताएँ हैं जो सभी समाजों में तथा सभी स्थानों में पाये जाने वाले परिवारों में देखने को मिलती हैं। जो इस प्रकार हैं-

(i) विवाह सम्बंधः

विवाह के कारण ही परिवार अस्तित्व में आता है। विवाह द्वारा ही स्त्री व पुरुष क़ो

यौन सम्बन्ध स्थापित करने की सामाजिक स्वीकृति प्राप्त होती है जिसके परिणामस्वरूप सन्तानें जन्म लेती हैं। माता-पिता एवं संतान मिलकर ही एक परिवार का निर्माण करते हैं। विवाह सम्बंध आजीवन बना रहता है, लेकिन दोनों में से किसी पक्ष के मर जाने या तलाक दे देने पर यह समाप्त हो जाता है।

(ii) विवाह का एक स्वरूपः

दो विषम-लिंगियों को यौन-सम्बंधों की स्थापना करने व उन्हें स्थायी बनाये रखने की समाज द्वारा स्वीकृति संस्थात्मक व्यवस्था ही विवाह है। इस विवाह के कई रूप समाजों में प्रचलित हो सकते हैं। एक समय में एक स्त्री व एक पुरुष का वैवाहिक बंधन एक विवाह के नाम से जाना जाता है। वर्तमान समाजों में एवं खासी, संथाल एवं कदार जनजातियों में यह विवाह पद्धति ही प्रचलित है। जब एक समय में एक पुरुष के एक से अधिक पत्नियाँ हों तो उसे हम बहुपत्नी प्रथा कहते हैं। गोंड, बैगा एवं कई जनजातियों में यह प्रथा देखने को मिलती है। एक स्त्री के एक समय में एक से अधिक पति हों तो उसे हम बहुपति विवाह कहते हैं। भारत में टोडा एवं खस राजपूतों में यह विवाह प्रथा प्रचलित है। कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि लड़कों का एक समूह लड़कियों के एक समूह से विवाह करता है। इसे हम समूह-विवाह के नाम से पुकारते हैं। कुछ समय पूर्व नागाओं एवं ऑस्ट्रेलिया की कुछ जनजातियों में यह विवाह प्रथा प्रचलित थी।

(3) वंशनाम की व्यवस्थाः

सभी परिवारों के बच्चों का वंश के आधार पर नामकरण करने का कोई न कोई आधार होता है। उसी के नाम से परिवार के बच्चे पहचाने जाते हैं। इसे हम उपनाम या वंशनाम कहते हैं। पितृवंशीय परिवारों में यह नामकरण पिता के वंश के आधार पर होता है। जबकि मातृवंशीय परिवारों में माता के वंश के आधार पर। भारत में हिन्दुओं एवं भील, संथाल तथा अनेक जनजातियों में नामकरण पितृवंशीय आधार पर होता है।

(4) आर्थिक व्यवस्थाः

परिवार के सदस्यों का भरण-पोषण करने तथा उनके अस्तित्व को बनाये रखने के लिए किसी न किसी प्रकार की अर्थ-व्यंवस्था सभी परिवारों में देखने को मिलती है। अर्थ-व्यवस्था के माध्यम से ही सदस्यों का भरण-पोषण होता है।

(5) सामान्य निवासः

परिवार के सभी सदस्यों के निवास की कोई न कोई व्यवस्था अवश्य होती है। विवाह के बाद जब पति-पत्नी, पति के पिता के यहाँ रहते हैं तो उसे हम पितृ-स्थानीय परिवार कहते हैं। कुछ जनजातियों को छोड़कर अधिकांश में यही व्यवस्था देखने को मिलती है। विवाह के बाद पति जब पत्नी के घर जाकर रहता है तो हम उसे मातृस्थानीय परिवार कहते हैं। यह व्यवस्था नायर, खासी आदि जनजातियों में पायी जाती है, लेकिन जब विवाह के बाद नवविवाहित दम्पत्ति न तो मातृ पक्ष के साथ और न ही पितृपक्षी के साथ रहता है, वरन अलग निवास बनाकर रहता है तो उसे नवस्थानीय परिवार कहते हैं।

(6) सार्वभौमिकताः

परिवार की उपस्थिति सार्वभौमिक प्राचीन, नगरीय हो या ग्रामीण, सभी में परिवार देखने को मिलेगा। प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी परिवार का सदस्य रहा है और भविष्य में भी रहेगा। सामाजिक विकास के सभी स्तरों पर परिवार देखने को मिलते हैं। कई पशुओं तक में परिवार पाये जाते हैं तो फिर मनुष्य जैसे विकसित प्राणी में परिवार का अभाव कैसे हो सकता है।

(7) भावात्मक आधारः

परिवार के सदस्य भावात्मक बंधनों से बंधे होते हैं। माता-पिता एवं बच्चों के बीच त्याग एवं वात्सल्य की भावना पायी जाती है। पति-पत्नी के बीच घनिष्ट प्रेम होता है। परिवार में प्रेम, सहयोग, दया, सहिष्णुता, त्याग, बलिदान आदि की भावनाएँ विद्यमान होती हैं जो पारिवारिक संगठन को सुदृढ बनाती हैं।

(8) रचनात्मक प्रभावः

मनुष्य जन्म लेने के बाद सर्व प्रथम परिवार के सम्पर्क में आता है। परिवार के सदस्यों का शिशु पर गहरा प्रभाव पड़ता है। परिवार व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं चरित्र-निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उसके व्यवहार, मनोवृत्ति, आदतों आदि पर परिवार की ही गहरी छाप होती है। समय और महत्व की दृष्टि से भी परिवार का स्थान अन्य समितियों की तुलना में उच्च है। कुछ विद्वान इसे शिशु की प्रथम पाठशाला कहते हैं, क्योंकि सर्वप्रथम बच्चे का शिक्षण परिवार में होता है, अन्य शिक्षण संस्थाओं के सम्पर्क में तो वह बाद में आता है।

(9) सीमित आकारः

अन्य बृहद् समूहों की तरह परिवार की सदस्य संख्या सौ, दो सौ, तीन सौ या अधिक नहीं हो सकती। इसका कारण प्राणीशास्त्रीय है। पुरानी पीढ़ी वृद्ध होकर मृत्यु को प्राप्त होती जाती है, अतः नयी पीढ़ी के आने पर भी सदस्यों की संख्या एक निश्चित सीमा तक ही बनी रहती है। सदस्यों के विभाजन के कारण भी परिवार का आकार छोटा बना रहता है। कभी-कभी परिवार में जन्म लेने के अतिरिक्त गोद लेने से भी इसकी सदस्यता प्राप्त की जाती है।

(10) सामाजिक संरचना में केन्द्रीय स्थितिः

परिवार की सामाजिक संरचना में केन्द्रीय स्थिति है और समाज का निर्माण भी परिवार रूपी इकाईयों के मिलने से होता है।

(11) सदस्यों का उत्तरदायित्वः

प्रत्येक परिवार अपने सदस्यों से कुछ उत्तरदायित्व की अपेक्षा रखता है। संकट के समय व्यक्ति अपने समाज व देश के लिए त्याग व बलिदान करता है, परन्तु परिवार के लिए तो वह सदैव कुछ न कुछ करता ही रहता है। परिवार के लिए वह बड़े से

बडा त्याग करने को तैयार रहता है। सदस्य सदा एक-दूसरे के हित व सुख-सुविधा की बात सोचते हैं। माता-पिता स्वयं कष्ट उठाकर बच्चों को सुखी देखना चाहते हैं। सदस्यों की इस भावना के कारण ही परिवार का संगठन स्थायी बना रहता है।

(12) सामाजिक नियंत्रणः

परिवार पर सामाजिक नियंत्रण बना रहता है। अनेक ऐसे नियम, प्रथाएँ एवं रुढ़ियाँ हैं जो परिवार को बनाये रखने एवं उस पर नियंत्रण रखने में योग देती हैं। कोई व्यक्ति मनमाने ढंग से न तो विवाह कर सकता है और न ही परिवार का निर्माण कर सकता है वरन् उसे इस हेतु सामाजिक नियमों एवं कानूनों का पालन करना होता है।

(13) परिवार की स्थायी और अस्थायी प्रकृतिः

एक समिति के रूप में परिवार स्थायी भी है और अस्थायी भी। सदस्यों की मृत्यु, तलाक आदि से एक परिवार की सदस्यता त्यागी जा सकती है, लेकिन एक संस्था के रूप में परिवार अमर है। संस्था के रूप में परिवार के नियम और कार्यप्रणाली आते हैं, जो परिवार को स्थायित्व प्रदान करते हैं इसलिए ही आदि काल से अब तक परिवार किसी न किसी रूप में बना हुआ है।

हाँ, यह जरुर है कि औद्योगिक क्रांति, विज्ञान की दृष्टि, सामाजिक स्तर पर सुधारवादी आन्दोलनों एवं शहरीकरण ने परिवार के स्वरूप, उसकी मान्यता, अवधारणा में बहुत बड़ा परिवर्तन किया है।

* * * * *

संदर्भिका

1. मानव और संस्कृति : डॉ श्यामचरण दुबे, पृ. 99
2. Sex and Repression in Savage Society : Malinowaski, P. 98
3. Op. Cit : Bohannan, P. 83
4 सामाजिक नृ. विज्ञान की भूमिका : हिन्दी अनुवाद, लूसी मेयर, पृ. 89
5 Society : MacIver & Page, P. 238
6 मानव और संस्कृति : डॉ. श्यामचरण दुबे, पृ 101
7. सामाजिक नृ विज्ञान की भूमिका : हिन्दी अनुवाद, लूसी मेयर, पृ 89

* * * * *